अभिनय के प्रकार

भरतमुनि ने अभिनय में अभिव्यक्ति के सभी माध्यमों का समावेश किया है। भरत का अभिनय Acting का पर्याय नहीं है। Acting नाट्य-प्रयोग का एक छोटा सा क्षेत्र है जबकि भरत की दृष्टि में अभिनयकर्ता को रस, भाव धर्मी, वृत्ति, प्रवृत्ति सिद्धि, आतोद्य, स्वर, गान, रंगमण्डप आदि से सम्बन्धित प्रयोग से जुड़ी सभी जानकारी होना अपेक्षित है। भरत ने मुख्यतः अभिनय की पाँच विधियों की व्याख्या की है। नाट्यशास्त्र के आठ से बारह अध्यायों में आंगिक अभिनय का विवेचन है। इनमें मनुष्य के अंगों, उपांगों और प्रत्यंगों की सूक्ष्म से सूक्ष्म चेष्टाओं, मुद्राओं और उनसे अभिव्यक्त होने वाले भावों का विवेचन किया है। चौदह से सत्रह अध्यायों में वाचिक अभिव्यक्ति के सभी कलात्मक माध्यमों का विवेचन है। भाषा को प्रभावशाली बनाने के लिये प्रयुक्त होने वाले उपादानों के रूप में छन्द, अलंकार, काव्यगुण, भूषण आदि का और भाषा को प्रभावहीन बनाने वाले काव्यदोषों की जानकारी भी दी गई है। आहार्य अभिनय की व्याख्या में पात्रोपयोगी वेषभूषा, रूपरचना, वर्णविधि और मंचसज्जा आदि से सम्बन्धित सामग्रियों और विधियों का विवेचन किया गया है। सप्तम अध्याय में अभिनय द्वारा भावों के प्रकटीकरण की विधि बताते समय सात्त्विक भावों के अभिनय की विधि भी बतलाई है। इसके अतिरिक्त भरत ने सामान्याभिनय और चित्राभिनय भेद से दो प्रकार के अभिनय-भेदों का पृथक् उल्लेख किया है। सामान्याभिनय आंगिक, वाचिक, सात्त्विक और आहार्य अभिनयों का आनुपातिक मिश्रण है। जिस प्रकार एक गन्ध का व्यापार करने वाला व्यापारी विविध गन्ध द्रव्य लाकर उन्हें आवश्यकता के अनुपात में मिलाता है और विक्रय योग्य गन्धपदार्थ तैयार करता है उसी प्रकार सामान्याभिनय में चतुर्विध अभिनयों से तत्वों का आनुपातिक मिश्रण करते हुये मंचन योग्य अभिनय तैयार किया जाता है। चित्राभिनय आंगिक अभिनय का प्रकार होते हुये भी विशिष्ट है। इसके अन्तर्गत आंगिक मुद्राओं की सहायता से सूर्योदय, चन्द्रोदय सन्ध्या, पर्वत, नदी, वृक्ष आदि प्राकृतिक दृश्यों और हंस, मोर, शुक, हिरन, अश्व, वानर, हाथी आदि प्राणियों और ग्रीष्म, वर्षा आदि ऋतुओं का प्रतीकात्मक रूप प्रस्तुत किया जाता है। सामान्याभिनय और चित्राभिनय का समाहार उक्त चार प्रकार के प्रमुख अभिनयों में कर लिया जाता है। इसलिये परवर्ती नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में चार प्रकार के अभिनय ही स्वीकार किए गये हैं। आगे के प्रकरण में चार प्रकार के मुख्य अभिनय के भेदों की चर्चा की जा रही है।

नाट्य चतुर्विध अभिनय पर प्रतिष्ठित है। नाट्यशास्त्र में मुख्यतः चार प्रकार के अभिनय माने गये हैं। ये हैं- आंगिक, वाचिक, सात्विक एवं आहार्य। नन्दिकेश्वर ने समग्र सृष्टि को चतुर्विध अभिनयात्मक शिव का विलास माना है। चराचर जगत् शिव का अंगिक अभिनय, अखिल वाङ्मय वाचिक अभिनय, चन्द्र, सूर्य, नक्षत्रादि आहार्य अभिनय तथा स्वयं शंकर सात्त्विक अभिनय रूप हैं। उरतोत्तरवर्ती प्राय: सभी नाट्यशास्त्रीय आचार्य अभिनय-चतुष्टय का पक्ष स्वीकार करते हैं।

१.२.१ आङ्गिक अभिनय

अभिनय भावों और विचारों की आन्तरिक चेष्टा का बाह्य प्रदर्शन है। आन्तरिक क्रियाओं के रूप में भाव अभिनय का आधार हैं। भावों से नियन्त्रित बाह्य चेष्टायें अपने विकास के लिये आन्तरिक चेष्टाओं का अनुगमन करती हैं। कुशल अभिनेता अपने आङ्गिक अभिनय के प्रदर्शन में मानसिक और शारीरिक उभयविध क्रियाओं में सामजस्य स्थापित करता है। आङ्गिक अभिनय में भाव, विचार, इच्छायें विविध अंगों, उपांगो और प्रत्यंगों के माध्यम से सम्पत्र की जाती हैं। जिस प्रकार एक कुशल वीणावादक तारों में झंकार द्वारा अनेक प्रकार से स्वरों में उतार- चढ़ाव उत्पन्न करता है, उसी प्रकार अभिनेता आंगिक अभिनय में अपने शरीर के विविध अंगों व इन्द्रियों की मांसपेशियों में संकोच, संक्षोभ, विस्तार तथा उपशमन आदि से क्रियाओं को उत्पन्न करता है। इससे प्रेक्षक नट द्वारा अभिव्यक्त और नाटककार द्वारा गुम्फित वस्तु का अर्थ ग्रहण करने में समर्थ रहता है। आङ्गिक अभिनय में नाटकीय अर्थ का उपस्थापन करने के लिये शारीरिक अंग,उपांग, व प्रत्यंग मुख्य उपादान बनते हैं। इनकी सहायता से मनोगत भावों की अभिव्यक्ति सहज हो जाती है और दर्शक पात्रों के कर्मों का साक्षाद्भावन करते हैं। साक्षाद्भावन से “रामादि अनुकार्य जो कि प्रेक्षकों के किये परोक्ष होते हैं वे उन्हें प्रत्यक्ष के समान भासित होने लगते हैं।" यह क्रिया मुख्यत: आंगिक अभिनय के माध्यम से सम्पन्न होती है।

भरत ने आंगिक अभिनय के प्रसंग में नाट्यप्रयोक्ताओं को शाखा, नृत्त और अंकुर को भी जानने का निर्देश किया है। इनमें से गायक तथा वक्ताओं द्वारा प्रयोग की जाने वाली भंगिमाओं से भावों की सूचना अंकुर है। नृत्य में जहाँ वाचिक संवाद नहीं होते वहाँ इस अभिनय का महत्त्व अधिक है। सामान्य रूप से नाटकों में प्रदर्शित लिया जाने वाला आंगिक अभिनय शाखा

कहलाता है। यह शिर, मुखज, जंघा, ऊरु,पाणि,पाद आदि के द्वारा किया जाता है। वस्तुत: अंगों और उपांगों के सम्मिलित रूप से की गई क्रिया को शाखा कहते हैं। करण और अंगहार के द्वारा प्रवृत्त होने वाला आंगिक अभिनय नृत्त कहलाता है। आंगिक अभिनय को भरत ने प्रथमतः तीन प्रकार का माना है?

१. शारीरज- अंगों, उपागों और प्रत्यंगों की सहायता से किया गया अभिनय शारीरज है।

२. मुखज- उपांगों की सहायता से किया गया अभिनय मुखज है।

३. चेष्टाकृत- स्थान, आसन आदि चेष्टाओं के रूप में सम्पन्न की गई क्रियायें चेष्टाकृत हैं। यद्यपि नाट्यप्रयोग की पूर्णता में शरीर के सभी अवयवों का योगदान है, फिर भी भरत ने अभिनय में सहायक अवयवों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है- अंग, उपांग और प्रत्यंग।

नन्दिकेश्वर ने चेष्टाकृत का अलग से वर्णन नहीं किया है। प्रतीत होता है कि वे उसे अंगों और उपांगों द्वारा विहित अभिनय से गतार्थ मानते हैं। भरत ने यद्यपि प्रत्यंग शब्द का प्रयोग किया है किन्तु स्पष्ट नहीं किया है। इसके अन्तर्गत मुख्यतः चारी, मण्डल, गति आदि का विवरण दिया गया है। नन्दिकेश्वर प्रत्यंगों के अवयवों का भी वर्णन करते हैं।

6. अंग- शिर (सिर), हस्त (हाथ), वक्ष (छाती); पार्श्व (बगल), कटि (कमर) और पाद (पैर) ये छः अभिनयोपयोगी अंग हैं।

२. उपांग- अंगों के छोटे-छोटे अवयव उपांग हैं। प्रत्येक अंग के पृथक्-पृथक् उपांग होते हैं। जैसे शिर के बारह उपांग हैं- नेत्र, पलक, पुतलियों आदि।

३. प्रत्यंग- अंगों को परस्पर जोड़ने वाले सहायक अवयव प्रत्यंग कहलाते हैं। इसके अन्तर्गत स्कन्ध (कन्धे), भुजा (बाजू), पृष्ठ (पीठ), उदर (पेट), ऊरु (जघन), जंघा (पिंडली) का समावेश किया जाता है। कुछ आचार्य ग्रीवा (गर्दन) को भी प्रत्यंगों में सम्मिलित करते हैं।

आंगिक अभिनय में भरत ने पदसंचार और गतियों का नाट्यशास्त्र के बारहवें अध्याय में विस्तृत विवरण दिया है। इसके साथ ही उठने-बैठने और लेटने की शैलियों, नौका, रथ आदि में चढ़ने और यात्रा करने की विधियों का भी वर्णन किया है। यह इसलिये भी महत्त्वपूर्ण है कि बहुसंख्यक नाटकों में रथ, हाथी, घोड़ा, आदि की सवारी नदी, पार करना आदि से संबन्धित घटनायें कथावस्तु का अंग बनती रही हैं, जिन्हें प्रत्यक्षत: मंच पर प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। विविध नाट्यधर्मी गतियों के आधार पर ही इनका मंचन संभव है। साथ ही बालक, वृद्ध, युवा, स्त्री, विदूषक, शकार आदि की गतियों के भेदों को भी समझाया गया है। रस और भावों के अनुसार गति भेद का भी विवरण यहाँ प्राप्त होता है। अभिनय अंगादि की समन्वित क्रिया-हृदयगत भावना का प्रभाव मुख के सभी अवयवों से व्यक्त होता है। भावावेग की स्थिति में केवल सिर और नेत्र ही प्रभावित नहीं होते अपितु अन्य अवयव भी प्रभावित होते हैं जैसे भावनाओं के तीव्र आवेश में नाक कभी फूलती, कभी पिचकती है, कभी अपनी स्वाभाविक अवस्था में रहती है, कभी नाक से लम्बी साँस ली जाती है, कभी तीव्र वेग से बार-बार छोड़ी जाती है। इन्हीं समस्त चेष्टाओं को नासाकर्म के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है। इसी प्रकार कपोल दुख में कुझला जाते हैं, आनन्द में प्रसन्न लगते हैं, रति अथवा लज्जा में आरक्त हो जाते हैं, क्रोध में काँपने लगते हैं, भय और शीत में संकुचित होते हैं। ये सब चेष्टायें कपोलकर्म के अन्तर्गत समझाई गयीं है। अधरकर्म के अन्तर्गत भी भावाभिव्यक्ति करने वाली अनेक चेष्टायें गिनाई गयीं हैं। उदाहरण के लिये शीत, दु:ख, क्रोध में अधर काँपने लगते हैं, किसी कार्य में अधिक शक्ति लगाने में होठ को दाँत से दबा दिया जाता है। बुभुक्षु भोजन के लालच में जीभ से होठ चाटता है। दाँत से अधरों को चबाते हुये क्रोध की अभिव्यक्ति की जाती । अभिनय में दाँत और चिबुक की भी अनेक चेष्टायें होती हैं। जैसे ज्वर, भय, शीत में दाँत किटकिटाने लगते हैं और चिबुक काँपने लगती है। जप, अध्ययन, भोजन आदि में ठुड्डी हिलती है। विस्मय, दुख शोक आदि की अवस्था में मुख कुह्यला जाता है। किसी बात का निषेध करने में मुख कुछ तिरछे पन के साथ खुलता है। अभिनय में सभी अंग समन्वित रूप से क्रियाशील होते हैं और पारस्परिक सामंजस्य से ही दर्शकों पर प्रभाव छोड़ते हैं। आचार्य भरत ने अपने सूक्ष्म लोकसन्दर्शन और लोकानुभव के आधार पर मुख के अंगोपांगादि का पृथक् पृथक प्रभावशाली विवरण दिया है। इनका नामकरण लौकिक चेष्टाओं और

प्रयोग के आधार पर ही किया गया है। भरत ने जिन अंगों उपांगों और प्रत्यंगों के अभिनय की चर्चा की है, उनका अनुप्रयोग नृत्य-नाट्य में विशेषतः होता है। क्योंकि नृत्य में वाचिक संवादों की न्यूनता के कारण भावों की अभिव्यक्ति मूलत: शारीरिक चेष्टाओं और अंगादि की गतियों और मुखादि की मुद्राओं के प्रयोग से ही सम्भव हो पाती हैं इसीलिये धनञ्जय आदि आचार्यों ने नृत्य को पदार्थ का अनुकरण कहा है। एक वाक्य में विभाव, अनुभाव आदि के रूप में कविनिबद्ध जितने भी पद होते हैं उनके भाव को नर्तक पृथक्-पृथक् मुद्राओं के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। इसलिये नृत्य में सिर, दृष्टि, पुतली, भौंह, पलक, नासा, कपोल, चिबुक, मुख, ग्रीवा, मुखराग, हस्तकर्म, वक्षस्थल, पार्श्व, उदर, कटि, ऊरु, जाँघ, पादकर्म, खड़े होने की मुद्रायें, द्वन्द्वयुद्ध आदि की क्रियाओं का भरत ने बहुत विस्तार से वर्णन किया है। ये भरतनाट्यम्, कथकली जैसे प्राचीन और पारम्परिक नृत्यनाट्यों आज भी प्रयोग किये जाते हैं। नाट्य वाक्यार्थ का अभिनय है। इसमें सत्त्व की प्रधानता अधिक होती है। सत्त्व में यदि कमी रह जाती है तो स्वर के उतारचढ़ाव द्वारा वाचिक अभिनय में प्रभाव पूर्ण वाणी से पूरा कर लिया जाता है। इसलिये वाक्य में स्थित एक-एक पद का अभिनय नाट्य में अपेक्षित नहीं। एक-एक पद के अर्थ को यदि आंगिक अभिनय की विशेष मुद्राओं से प्रदर्शित किया जायेगा तो नाट्य बहुत ही अस्वाभाविक लगने लगेगा। अभिनय में अभिनेता का स्वातन्त्र्य- आचार्य भरत के अनुसार हस्त, पाद आदि की मुद्रायें अनन्त हो सकती है। रुचि, अभ्यास और लोक-परिज्ञान से इनमें परिवर्तन एवं इनकी संख्याओं में न्यूनाधिक्य भी हो सकता है। फिर भी भरत ने अपने समय में प्रचलित मुद्राओं का परिचय देते हुये कलाकार को कल्पना और नूतन प्रयोग के लिये पर्याप्त अवकाश दिया है। मुद्राओं के प्रयोग में परम्परा रूढ़िवादिता के त्याग का भी परामर्श दिया है। इसलिये कुशल अभिनेता को हस्ताभिनय में आकृति, चेष्टा, संकेत और लोक-मानस को समझकर अपने विवेक के अनुसार प्रयोग करना चाहिये केवल परम्परा की अनुपालना के लिये नहीं। अभिज्ञानशाकुन्तल में प्रयुक्त कतिपय गतियाँ और चेष्टायें- शरपतन के भय से शरीर के पश्चाद्भाग को पूर्वभाग में प्रवेश कराते हुये हिरन की गति का अभिनय करने वाला अभिनेता हरिणप्लुताचारी गति का अनुकरण करेगा। प्रथम अंक के आरम्भ में मृग का पीछा करते हुये प्रविष्ट दुष्यन्त के द्वारा धनुषधारण की मुद्रा के अभिनय के किये कपित्थ मुद्रा का उपयोग किया जा सकता है।

• मृग और रथ के बीच में वैखानसों की उपस्थिति से रथ को रोकने के लिये घोड़ों की लगाम खींचने का अभिनय कटकामुख मुद्रा से किया जा सकता है।

प्रथम अंक में दुष्यन्त को वाटिका के अन्तराल से आलाप सा सुनाई देता .है। परस्परसम्भाषण को आलाप कहते हैं (आलापः परस्परं सम्भाषणम्। (अभि.शा.च., पृ. ३७) नाट्यनिर्देश में लिखा गया है- “कर्ण दत्वा । इसका अभिनय करने के लिये दृष्टि को किञ्चित् तिरछा करके, सिर को पार्श्व में झुकाकर व तर्जनी को कान के पास ले जाकर शब्द सुनने का अभिनय किया जाना चाहिये।

• अभिज्ञानशाकुन्तल के प्रथम अंक में शकुन्तला और उसकी सखियों द्वारा वृक्षसेचन का अभिनय किया जाने का नाट्यनिर्देश कालिदास ने किया है-

“शकुन्तला- न केवलं तात नियोग एव; अस्ति मे सोदरस्नेह एतेषु। इति । शक्षसेचनं रूपयति)" यहाँ 'रूपयति' क्रिया पद 'अभिनयति' अर्थ का वाचक है। इस क्रिया का अभिनय सम्पादन करने लिये राघव भट्ट निर्देश करते हैं कि नलिनी-पद्मकोश की मुद्रा बनाकर उसे कन्धे तक ले जाकर, सिर की अवधूत क्रिया (सिर को एक बार नीचे की ओर झुकाना) द्वारा देह को कुछ झुकाकर और अधोमुखी मुखमुद्रा द्वारा वृक्षसिंचन की चेष्टा का अभिनय किया जाता है। इसमें अश्लिष्ट स्वस्तिक मुद्रा, अधोमुख शुकतुण्ड और परस्पर परांगमुख नलिनीपद्मकोश मुद्राओं का समन्वित प्रयोग किया जा सकता है।

• अभिज्ञानशाकुन्तल में भ्रमरबाधा का अभिनय करने के लिये राघव भट्ट के अनुसार आंगिक अभिनय की विशेष भंगिमा का प्रयोग अपेक्षित है। इसमें सिर की विधुत अवस्था, अधर में कम्पन, मुख पर स्थित चंचल . और परांगमुख तल वाली हाथ की पताक मुद्रा का प्रयोग किया जाना चाहिये।

प्रथम अंक में दुष्यन्त के साथ वार्तालाप के प्रसंग में एक स्थान पर नाट्य निर्देश किया गया है- "शकुन्तला शृंगारलज्जा रूपयति" इसका अभिनय सिर की परावृत्तमुद्रा के द्वारा, ऊपरी पलक को गिराकर और दृष्टि को अधोमुखी और करके किया जा सकता है। अभिज्ञानशाकुन्तल के तीसरे अंक में शकुन्तलां के अधररस का पिपासु दुष्यन्त उसका लज्जावनत मुख उठाना

चाहता है। वहाँ शकुन्तला रूप धारिणी नटी निषेध का अभिनय करती है।

राजा-.... सदयं सुन्दरि! गृह्यते रसोऽस्य॥ अभि.शा., ३/२१

(इति मुखमस्याः समुन्नमयितुमिच्छति। शकुन्तला परिहरति नाट्येन) राघवभट्ट के अनुसार दुष्यन्त के द्वारा शकुन्तला के मुख को उठाने की चेष्टा का अभिनय हाथ की त्रिपताक मुद्रा बनाकर और शकुन्तला द्वारा उससे बचने की चेष्टा का अभिनय शीर्ष की परावृत्त अवस्था के द्वारा और अधर को छुपाने की चेष्टा का अभिनय 'विनिगूहित' द्वारा किया जा सकता है। तीसरे अंक में सखियाँ अस्वस्थ शकुन्तला को कमलिनी के पत्ते से पंखा झल रहीं हैं। वे दोनों उससे पूछती हैं कि कमलिनी के पत्ते की वायु अच्छी तो लग रही है? ज्वर की पराकाष्ठा में उसे इस बात का भान ही .नहीं है। प्रत्युत्तर में वह कहती है कि क्या तुम मुझे हवा कर रही हो? उसकी यह विषम अवस्था देखकर दोनों एक दूसरे को देखते हुये विषाद का अभिनय करती हैं। विषाद का अभिनय करने लिये शिर की धुत अवस्था (ना.शा., ८/२३, २४ सिर को धीरे-धीरे दायें-बायें हिलाने) और विषण्ण दृष्टि (ना.शा., ८७१) फैली पलकें, बिखरे हुये नेत्रप्रान्त और स्तब्ध पुतलियों का प्रयोग किया जाता है।2

• चौथे अंक के आरम्भ में पुष्प चुनने का अभिनय करती हुई प्रियंवदा और शकुन्तला के मंच पर प्रवेश करने का निर्देश किया गया है। इसके लिये प्रायः अरालमुद्रा और हंसास्य मुद्रा का प्रयोग किया जाता है। उत्तान बायें हाथ से अराल और पुरःपार्श्व में दाहिने हाथ से हंसास्य मुद्रा बनाई जाती है। जब तर्जनी उंगली धनुष की तरह झुकी हुई, अंगुठा कुञ्चित (सिकुड़ा हुआ), अन्य उंगलियाँ अलग ऊपर की ओर मुड़ी हुई हों उसे पताक हस्त कहते हैं। तर्जनी, मध्यमा और अंगुष्ठ त्रेताग्नि की तरह परस्पर मिली हुई, अनामिका और कनिष्ठा फैली हुई हों उसे हंसास्य कहते हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल के चौथे अंक मे शकुन्तला की विदाई के अवसर पर एक मृगपोतक उसके मार्ग को रोकता है। इस अवसर पर गतिभंग और परावर्तन इन दो गतियों की विशेष चर्चा की गई है। यथा- शकुन्तला- (गतिभंग रूपयित्वा) को नु खल्वेष निवसने मे सज्जते। (इति परावर्तते)

यहाँ राघवभट्ट गतिभंग के लिये ऊरूद्वत्त और परावर्तन के लिये चारी का निर्देश करते हैं।

छठे अंक के प्रवेशक में सानुमती तिरस्करिणी विद्या से स्वयं को आच्छादित करके दुष्यन्त की गतिविधि का निरीक्षण करने के लिये आकाशमार्ग से प्रवेश करती है और उद्यान में उतरने का अभिनय करती है। राघवभट्ट यहाँ उतरने का अभिनय करने के लिये गंगावतरण नामक चारी-करण का निर्देश करते हैं। इसमें पैर उंगलियों और तलवे सहित ऊपर उठा हुआ और हस्त त्रिपताक मुद्रा में अधोगामी उंगलियों वाला और सिर सन्नत स्थिति में रहता है।

• छठे अंक में वसन्तोत्सव आयोजन की निषेधाज्ञा से अनभिज्ञ उद्यानपालिका आम्रमंजरी तोड़ने के लिये हाथ की कपोतमुद्रा बनाकर आम्रमंजरी तोड़ने का उपक्रम करती है।3 पताकहस्त में दोनों हाथों के पार्श्वों को परस्पर मिला कर कपोतहस्त बनाया जाता है।

Lecture by Ritu Mishra,

Semester -3

Department of sanskrit

Shivaji college.